जनवरी–मार्च, 2025 वर्ष : 26 अंक : 1

हिन्दी जगत

विश्व हिन्दी न्यास का त्रैमासिक प्रकाशन

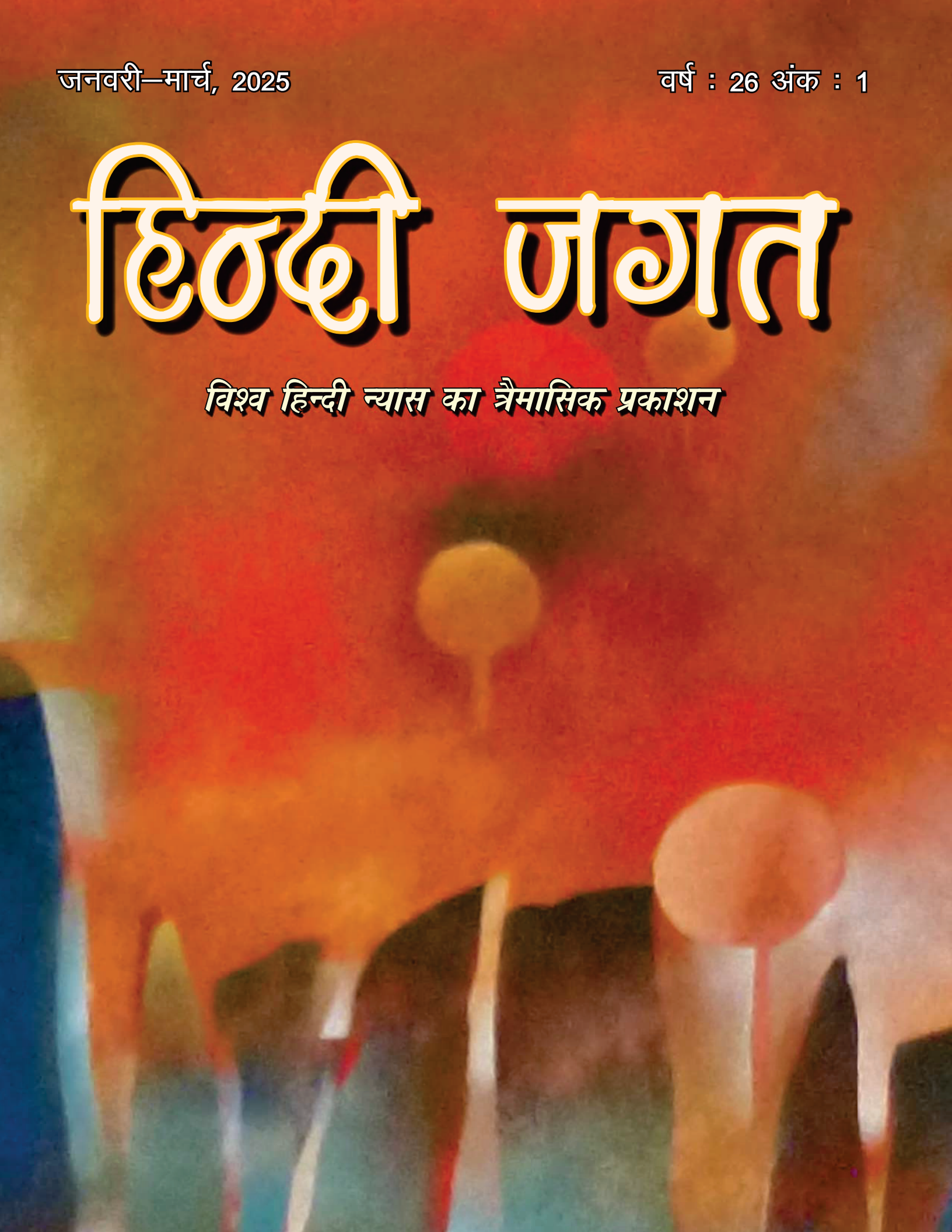

विश्व हिन्दी न्यास
WORLD HINDI FOUNDATION, INC.

A Tax-Exempt Charitable & Educational Foundation (ID 31-1679275)

Website : www.worldhindifoundation org

Board of Directors

Executive Director

Dr. Anchala Sobrin
20 Presidential Way, Hopewell Junction, NY 12533
Tel: (845) 226 2542 । Email: hindinyas@gmail.com

Secretary

Mrs. Padmini Prasad
1282 Royal Pointe Lane, Ormond Beach, FL 32174
Tel: (845) 764 1058 । Email: prasad.padmini@gmail.com

Treasurer

Mr. Pradeep Agarwal
25, Oak Tavern Circle, Branchburg NJ 08876
Tel: (646) 472 6320 । Email: pnagarwal@gmail.com

Directors

Dr. Surendra Nath Pandey, GA (706) 610 1601
pandeysn@yahoo.com
Mrs. Seema Khurana, NY (845) 227 8605
seemakhurana1223@gmail.com
Mrs. Sharmishtha Dutta Banerjee NY (845) 764 9014
sduttabanerjee@gmail.com
Mr. Anil Agarwal, NY (718) 271 3129
manishi.anil@gmail.com
Prof. Suresh Rituparna, India (+91) 09810453245
rituparna.suresh@gmail.com
Dr. Shyam Narayan Shukla, CA (510)770-1218
shuklas@comcast.net
Dr. Ila Prasad, TX (832) 446-3677
ila_prasad1@yahoo.com

Chapter Directors

Buffalo: Mrs. Meena Rustgi (716) 632 5768
rustgime@roadrunner.com
California: Mrs. Nirmala Shukla (510) 770 1218
nirmalashukla@comcast.net
Chicago: Mr. Kamal Gupta (847) 612 4244
citkam@gmail.com
New Jersey: Mr. Sharad Agarwal (732) 283 0566
sharad@sntravel.net
New York: Mr. Man Mohan Maheshwari (212) 678 9011
m_wari@yahoo.com

Web Master

Mr. Saugata Banerjee
Email : ronbans@gmail.com

Editor Hindi Jagat & International Co-ordinator

Prof. Suresh Rituparna
221 Prabhavi Apartments, Plot No. 29B,
Sector 10, Dwarka, New Delhi 110075
Tel: 91 11 4558 4374, Mob.: 91 98104 53245
Email: rituparna.suresh@gmail.com

विश्व हिन्दी न्यास की परिकल्पना (Vision)

1. एक ऐसा विश्व जहाँ हिन्दी एक महत्त्वपूर्ण वैश्विक-भाषा के रूप में विकसित हो।
2. एक ऐसी कार्य साधक भाषा बनाने का प्रयास जिसका प्रयोग सरकारी एवं निजी संस्थानों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हो सके।

विश्व हिन्दी न्यास का उद्देश्य (Mission)

1. हिन्दी भाषा के प्रति वैश्विक जागृति लाने का प्रयास
2. ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में इसके प्रयोग का विस्तार
3. हिन्दी भाषी समुदायों के बीच संस्कृति जन्य ज्ञान पर आधारित मूल्य बोध एवं शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार

विश्व हिन्दी न्यास का लक्ष्य (Goals)

1. न्यास का प्रयास रहेगा कि वह ऐसे व्यक्तियों एवं संस्थाओं को अपना समर्थन और प्रोत्साहन दे जो हिन्दी भाषा के शिक्षण एवं प्रयोग के क्षेत्र में जागृति फैलाने के कार्य से जुड़ी हुई हैं।
2. दक्षिण एशियाई विद्वानों, लेखकों, कलाकारों एवं विशेषज्ञों के सहयोग से विशिष्ट परियोजनाओं का सूत्रपात करना।
3. एक ऐसे अन्तर्जालिक आभासी मंच का निर्माण करना जिस पर 'ऑनलाइन सेटिंग' के माध्यम से भारतीय सामुदायिक केन्द्रों एवं शिक्षण संस्थाओं तक हिन्दी-शिक्षण-कार्यक्रमों को पहुँचाया जा सके।

न्यास की सदस्यता

विश्व हिन्दी न्यास के उद्देश्य और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हमें अनेक सक्रिय सदस्यों की आवश्यकता है। हमारा प्रयास है कि जो भी व्यक्ति न्यास के उद्देश्य, लक्ष्य एवं प्रेरक कार्यों में रूचि रखता है, न्यास का सदस्य बनने के लिए उसका हम सहर्ष स्वागत करते हैं। न्यास का सदस्य बनने के लिए दो श्रेणियां हैं--

1. आजीवन सदस्य (सदस्यता राशि - $250 मात्र)
2. वार्षिक सदस्य (सदस्यता राशि - $ 25 मात्र)

अनुदानदाता सदस्यों के लिए पांच श्रेणियां हैं:-

1. हिन्दी रत्न - $20,000 अथवा इससे अधिक
2. हिन्दी संरक्षक - $10,000 अथवा इससे अधिक
3. हिन्दी हितकारी - $5,000 अथवा इससे अधिक
4. हिन्दी मित्र - $2,500 अथवा इससे अधिक
5. हिन्दी शुभचिन्तक - $1000 अथवा इससे अधिक

आप किसी भी श्रेणी का चुनाव कर सकते हैं और अनुदान का चैक कोषाध्यक्ष (Treasurer) श्री प्रदीप अग्रवाल को निम्न- लिखित पते पर भेजने की कृपा करें।

25, Oak Tavern Circle, Branchburg, NJ 08876 USA
Tel: (646) 472-6320 Email: pnagarwal@gmail.com

हिन्दी जगत

ISSN 1543-8651 (USA)

जनवरी-मार्च 2025 ● वर्ष : 26 अंक : 1

सम्पादक मंडल

प्रबंध सम्पादक
डॉ. अंचला सोब्रिन
àßmail : hindinyas@gmail.com, Tel : +1(845) 226-2542

सम्पादक
प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण
àßmail: rituparna.suresh@gmail.com, Tel : 91-9810453245

●

सह-सम्पादक
इला प्रसाद
àßmail : ila_prasad1@yahoo.com, Tel : +1(832) 446-3677

निवेदन : कृपया प्रकाशन हेतु अपनी रचनाएँ सम्पादक मंडल के पास भेजें। पत्रिका में व्यक्त विचार स्वतन्त्र रूप से लेखकों के हैं, न्यास का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा प्रकाशित रचनाओं के लिए हम किसी प्रकार का मानदेय देने में असमर्थ हैं।
इस अंक में प्रकाशित रचनाओं के लेखकों के प्रति हम अत्यन्त आभारी हैं।

विश्व हिन्दी न्यास,
World Hindi Foundation
20 Presidential Way Hopewell Junction,
New York, 12533
के लिए
डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय-संयोजक द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।
मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

अनुक्रम

आपके पत्रों से		2
सम्पादकीय		3
छह कविताएँ	—ललित मंगोत्रा	4
महाकुम्भ का लालित्य	—परिचय दास	5
जब लोहिया ने गोवा में आजादी की अलख जगाई	—संतोष बंसल	7
तथागत	—डॉ. शिप्रा मिश्रा	9
के.एल. सहगल	—वीरा चतुर्वेदी	10
कविताएँ	—अनिता रश्मि	11
अंतिम यात्रा	—नीलम जैन	12
तीन कविताएँ	—ज्योति कृष्ण वर्मा	14
राजा रविवर्मा का कला संसार	—प्रभु जोशी	15
गांधी का हिन्दी-चिन्तन	—सरोजिनी नौटियाल	20
शाम घर लौटते समय	—सुनील बाबुराव कुलकर्णी	23
तीन ग़ज़लें	—डॉ. राधिका सिंह	23
आठ कविताएँ	—जसवीर त्यागी	24
पूस की एक रात	—डॉ. रंजना जायसवाल	25
भारत की विदेश-नीति और हिन्दी	—डॉ. पुनीत बिसारिया	28
सूत्र काव्य	—अदित कंसल	29
चार कविताएँ	—राकी गर्ग	30
अनामंत्रित	—राम नगीना मौर्य	31
लापता है सहयोग	—शशिकला त्रिपाठी	33
कुछ चुने हुए दोहे	—हस्तीमल 'हस्ती'	34
बनतितली	—रमेश कुमार सोनी	34
ओह माय गॉड!	—रणजोध सिंह	35
अंतिम पड़ाव	—विनीता तिवारी	36
जैनेन्द्र एवं 'त्यागपत्र' : उपन्यास और फिल्म के रहस्य-सूत्र	—कमल किशोर गोयनका	37
कुछ दोहे	—जय चक्रवर्ती	40
तीन कविताएँ	—निधि नित्या	41
गांधी और सिनेमा	—डॉ. हेमाली संघवी	42
उसके सिवा	—अशोक व्यास	44
हाय ये धंध	—मनोज धीमान	४4
एक खिंची हुई डोर	—पवन माथुर	45
ऋतु चक्र	—केशव शरण	46
कविता के अनुवाद की समस्या	—श्रीकांत वर्मा	47

आवरण पारदर्शी : भावना चौधरी

आपके पत्रों से

'हिन्दी जगत' का अक्टूबर-दिसम्बर अंक प्राप्त हुआ। 'विश्व हिन्दी न्यास' की यह पत्रिका निश्चित यह विश्वास जगाती है कि किसी दिन हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनेगी।

पत्रों से प्रारम्भ यह अंक भी अपने कालमों में हिन्दी के प्रति रुझान को दर्शाता है। कहानी कविता, व्यंग्य आदि सभी उच्चकोटि की सामग्री इस अंक को अविस्मर्णीय बनाती है। मेरी बहुत बहुत शुभकामनाएँ।

जयप्रकाश श्रीवास्तव
आई.सी.-5 सैनिक सोसायटी शक्ति नगर
जबलपुर-482001 (म.प्र.); मो. 7869193927

हिन्दी जगत के रजत जयंती वर्ष पर आपको व सम्पादकीय मंडल के सभी सदस्यों को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ।

राजेन्द्र उपाध्याय द्वारा लिखित 'कमीज' कविता प्रेम और वियोग के बीच की भावनाओं को व्यक्त करती है, जहाँ एक व्यक्ति अपनी पसंदीदा वस्तु (कमीज) को पाने के लिए संघर्ष करता है, लेकिन वित्तीय अभाव के कारण उसे तुरंत हासिल नहीं कर पाता। अगले दिन, जब वह पुन: उसी वस्तु को पाने जाता है, तो वह वस्तु कहीं नहीं मिलती, जिससे उसे आंतरिक हताशा और खोने का अहसास होता है।

ऐसे ही आगे अनुराधा मैंदोला जी की कविता में नदी की यात्रा और प्रकृति के चक्रीय सन्तुलन को चित्रित किया गया है, जहाँ नदी आकाश से पानी ग्रहण करती है और इसे वापस लौटाने का वादा करती है। यह जीवन के निरंतर बदलाव और पुनर्नवा की प्रतीक है। आशा करती हूँ आगे भी इस तरह के सुंदर लेख मिलते रहेंगे।

शुभी त्रिपाठी
लक्ष्मी नगर, दिल्ली

अक्टूबर-दिसम्बर, 2024 का अंक मिला, धन्यवाद। हिन्दी जगत के बारे में जितना कहा जाए, कम है। हिन्दी की कहानियों, कविताएँ सम्पादकीय सब कुछ बहुत रोचक और ज्ञानवर्धक लगता है। पत्रिका आते ही पढ़ने का मन करता है। इन्द्रजीत कौर का व्यंग्य 'अंगूर खट्टे नहीं थे' पढ़ा, आज भी कुछ लोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकते हैं। मृत्युंजय कुमार मनोज की लघुकथा 'वो नाश्ता' तो दिल को छू गया। जसवीर त्यागी की कविता 'इतिहास' और 'कुछ इंसान' अच्छी लगी। वैसे हिन्दी जगत की सभी कविताएँ और गज़लें अच्छे स्तर की होती हैं जो पत्रिका को महत्वपूर्ण बनाती हैं। हमें विश्वास है 'हिन्दी जगत' पत्रिका इसी प्रकार प्रकाशित होती रहेगी।

पूर्णिमा शर्मा
नोएडा

अक्टूबर-दिसंबर, 2024 का अंक पढ़कर प्रसन्नता हुई। प्रस्तुत अंक में कुछ आलेख और कहानियाँ बहुत अच्छी लगीं। शीला झुनझुनवाला का आलेख ''यादों के गलियारों से 'काशी'-''- पढ़कर इस प्राचीन नगरी का धार्मिक व ऐतिहासिक महत्त्व जानने को मिला। साथ ही काशी में जन्में प्रख्यात गुणी जनों का संगीत, साहित्य व कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान का भी ज्ञान मिला। वीरा चतुर्वेदी की कहानी 'बहुत उदास है चाय की टेबल' परिवार में हो रहे दैनिक बदलाव, व्यवहार मनोरंजन, उत्सव व शोक सभी भावों का सटीक प्रस्तुतिकरण है। पंकज सुबीर की कहानी, 'चाबी', अवसाद में डूबे एक पिता की मन:स्थिति और उलझन का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत अंक में जिस तरह की विविध, नवीन और रोचक साहित्य पढ़ने को मिली, आशा करती हूँ कि आगामी अंक भी रोचक व मनोरंजक होंगे।

एकता सक्सैना
78-सी, पॉकेट ए, मयूर विहार, दिल्ली

'हिन्दी जगत' के अंक मुझे समय से प्राप्त होते रहते हैं, आभार। पत्रिका में अधिकांश रचनाएँ पठनीय और महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराने में सहायक होती हैं। लता कादम्बरी द्वारा लिखित यात्रा-वृतान्त 'राम नगरिया बुला रही है! चले अयोध्या की ओर' में बड़ा सजीव वर्णन किया गया है। यहाँ कैसे पहुँचे और किस प्रकार दर्शन करें बहुत ही स्पष्ट रूप से बताया गया है। जसवीर त्यागी की आठ कविताएँ जिसमें भावनात्मक गहराई, सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाएँ सरल भाषा एवं प्रभावशाली अभिव्यति के कारण इसे पठनीय बनाती है।

'लड्डू पुराण' एक व्यंग्यपूर्ण लेख है जो धार्मिक प्रसाद वितरण की अव्यवस्थाओं और भ्रष्टाचार पर कटाक्ष करता है। साथ ही सामाजिक विसंगतियों पर सोचने को मजबूर करता है।

पत्रिका के सफल संपादन के लिए बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।

इशिता त्रिपाठी
कृष्ण कुंज कालानी, दिल्ली

हिन्दी जगत पत्रिका के प्रकाशन के 25 वर्ष पूर्ण हुए, बधाई। पत्रिका के माध्यम से प्रवासी व आप्रवासी भारतीय लेखकों के द्वारा महत्त्वपूर्ण व ज्ञानवर्धक साहित्य पाठकों को पढ़ने को मिलता रहता है। कहानियाँ, कविताएँ आलेख व सभी रचनाओं की शब्द-रचना बहुत, चुनी हुई और आकर्षित करती है। पत्रिका की विशेषता यह भी है कि इसके माध्यम से किसी भी क्षेत्र के प्रख्यात व्यक्ति, चाहे वो कला, साहित्य, कवि, निदेशक या संगीत के हों, उनके बारे में कुछ अनसुने किस्से व प्रसंग पढ़ने को मिल जाते हैं। व्यंग्यकार की लेखनी ने भी प्रभावित किया।

जिस तरह की साहित्यिक सामग्री आप हिन्दी जगत प्रेमियों के लिए संजोते है उसके लिए आभार और पुन: धन्यवाद।

अनुपम भटनागर
1409, पीतमपुरा, दिल्ली

सम्पादकीय

एक लघु पत्रिका के जीवन में 25 वर्ष का समय छोटा नहीं होता है। सन् 2000 में विश्व हिन्दी न्यास के तत्कालीन अध्यक्ष प्रो. राम चौधरी ने 'हिन्दी जगत' शीर्षक से एक पत्रिका निकालने का जो संकल्प लिया था, उसे इस अंक के साथ 25 वर्ष पूरे हो चुके हैं। छब्बीसवें वर्ष का यह पहला अंक आपके हाथों में हैं। पत्रिका में भारत सहित विश्व भर में फैले हुए साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। फलत: इसका फलक वैश्विक है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विश्व हिन्दी न्यास के अब तक के सभी पदाधिकारियों ने निरन्तर इस संकल्प को जिलाए रखा है। इस अवसर पर न्यास एवं पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी मित्रों के प्रति अपना आभार व्यक्त करना मेरा दायित्व है।

सूचना प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व विस्तार और रोज-रोज, नए-नए टूल्स के आविष्कार ने मानवीय सर्जनात्मक ऊर्जा को जो नए क्षितिज प्रदान कर दिए हैं, वे हमें कहाँ ले जाकर छोड़ेंगे, हमें नहीं मालूम। यह ब्रह्माण्ड अनंत है। हमारी मस्तिष्क की शक्ति भी अनंत बताई जाती है। ज्ञान के नए-नए द्वार खुलते जा रहे हैं और हम हर दिन नयी-नयी सूचनाओं के घटाटोप में घिर कर अन्तत: निराश और हताश हो जाते हैं यह सोच कर कि हमें तो कुछ भी नहीं आता है। यह ठीक है कि सीखने की कोई उम्र नहीं होती और न कोई सीमा होती है, लेकिन उस सीखे हुए को जीवन में उतारने का, अनुभव करने का, आनंद लेने का समय ही नहीं रह जाता है। 24 घण्टे का समय भी कम पड़ रहा है। मनुष्य की चेतना पर इस अतिरिक्त जाने-अनजाने और अनचाहे ज्ञान का बोझ निरन्तर बढ़ रहा है। हम कहाँ और किधर जा रहे हैं, हमें नहीं मालूम। हमारे ऊपर बाजार की शक्तियों का शासन है। सब कुछ सरल, आसान और सर्वसुलभ होता जा रहा है लेकिन फिर भी असंतोष की मात्रा बढ़ती जा रही है। कुछ न कुछ ऐसा है जो हमारी पहुँच से दूर है। हमारी इच्छाओं और अकांक्षाओं का कोई अन्त नहीं है।

अब साहित्य चिन्तन, मनन, साधना और तपस्या की चीज नहीं रह गया है। जीवन-जगत के कार्य-व्यापारों से जो समझ विकसित होती थी, उसके प्रत्यक्ष अनुभव की जरूरत नहीं रही। आभासी दुनिया घर बैठे हमको वह सब दिखा रही है और हम समझ रहे हैं कि अरे! बस यही है वह अनुभव जो हमारी आँखें देख रही हैं? सोचने की बात यह है कि पहाड़ों पर पड़ी बर्फ के मनोरम दृश्य को हम देख रहे हैं अपने स्क्रीन पर, लेकिन क्या हम उस ठंडक को भी महसूस कर पा रहे हैं जो उस पहाड़ की तलहटी में मौजूद है। हम स्क्रीन पर केसर की क्यारियों में खिले फूलों को देख रहे हैं, लेकिन क्या हम तक उसकी खूशबू भी पहुँच रही है? सावन के महीने में पेड़ की डालों से लटके झूले पर पींग लेती, खिलखिलाती नव यौवनाओं के दृश्यों को तो हम देख रहे हैं लेकिन क्या उन पींगों के साथ आती-जाती हवा के झोंकों की कोई प्रतीति हमें हो रही हैं?

आभासी अनुभव और प्रत्यक्ष अनुभव के फर्क को जब तक हम नहीं समझेंगे, जब तक रूप-रस-गंध की दुनिया से हमारा परिचय नहीं हो पायेगा, तब तक हम कुछ भी सार्थक कैसे रच पायेंगे? आभासी दुनिया ने हमें अपने-अपने कमरों में बंद कर दिया है। सोते-उठते-बैठते हाथों की ऊँगलियाँ अपने आप, अनायास ही स्मार्ट फोन पर चली जाती हैं और फिर हम उसकी तिलिस्मी दुनिया में अपने यथार्थ जगत से बहुत दूर चले जाते हैं। क्या बूढ़े क्या जवान, सभी को यह जादुई दुनिया अपनी गिरफ्त में लेती जा रही है।

इस मायावी जाल का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह है कि हम श्रम के महत्त्व को भूलते जा रहे हैं। फोन करते ही जरूरत का सब सामान घर की चौखट पर आ जाता है। हमें नहीं मालूम कि जो भोजन हमने मंगाया है वह कैसे वातावरण में तैयार किया गया है? स्वच्छता का, शुचिता का ध्यान भी रखा गया है या नहीं? यह हमारे स्वास्थ्य पर कैसा असर डालेगा, यह नहीं मालूम। हमें बस अपनी भूख और स्वाद की चिन्ता है। बाजार और विज्ञापन ने हमारी सोच, समझ और सक्रियता पर डाका डाल दिया है। हम उसके गुलाम हो गये हैं।

किसी भी वस्तु के चुनाव में हमारे अनुभवों की भूमिका गौण होती जा रही है। हम उसी को ज्यादा महत्वपूर्ण और सच मान लेते हैं, जैसा बताया और दिखाया जा रहा है। परिणामस्वरूप हमारी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं में द्वन्द्व-युद्ध चलता रहता है और अक्सर हम गैर-जरूरी चीजों को महत्वपूर्ण मानने की गलती कर बैठते हैं। उत्साहवश हम ऐसी अनेक वस्तुओं का संग्रह करते चले जाते हैं जिसकी सीमित उपयोगिता होती है और धीरे-धीरे जब उसकी उपयोगिता में कमी आने लगती है तो वह एक संग्रहणीय वस्तु में बदल कर घर की आल्मारियों या कोनों में घुसा दी जाती है। फलत: आज उच्च एवं मध्यवर्ग के घर, (धन की प्रचुरता के कारण भी) गोदामों में बदलते जा रहे है। अब घरों में हम नहीं, हमारा सामान रहता है और बहुत बार तो ऐसा भी होता है कि जरूरत पड़ने पर याद ही नहीं आता कि वह वस्तु कहाँ रखी है।

साहित्य के क्षेत्र में भी परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। लोग अपनी साहित्यिक विरासत को बिना पढ़े, बिना जाने साहित्य रचना में तल्लीन हैं। जबसे DTP (Desk Top Printing) का युग आया है या Print on Demand का व्यापारिक उपक्रम शुरू हुआ है, तब से अनेक छोटे-छोटे प्रकाशक उभर आए हैं जो कवि-यश-प्रार्थी साहित्यकारों की रचनाओं के प्रकाशन के लिए अच्छी-खासी राशि वसूलकर उन्हें 25-50 प्रतियां दे देते हैं। ये प्रतियाँ सामान्यत: मित्रों में बंटने के काम आ रही हैं या उनके मित्रों के बीच किए जा रहे विमोचनों के चित्र फेसबुक की शोभा बढ़ा रहे होते हैं। ऐसे वातावरण में 'हिन्दी जगत' का यह प्रयास रहता है कि वह सार्थक-साहित्य को आप तक पहुँचाता रहे और इसकी सफलता के लिए आप सबके सक्रिय सहयोग की प्रतीक्षा हमें रहती है।

छह कविताएँ ▫ ललित मंगोत्रा

मरने के बाद कविता

मैंने अपने मरने के बाद
एक कविता लिखी
ना मेरे पास काग़ज़ था
ना पेन
पेन पकड़ने वाले हाथ भी नहीं थे
यहाँ तक की सोचने के लिए
दिमाग भी नहीं था
पर फिर भी
मैंने कविता लिखी,
इस कविता को लिखने के लिए
ना मुझे पेन की ज़रूरत थी
ना हाथों की
ना ही दिमाग की
इनसे वैसे भी कविता कहाँ लिखी जाती है
यह कविता लिखने के लिए
मैं हवाओं के झोंकों में घुल गया
आकाश के नीले तिलिस्म
में फैल गया
पेड़ों की हरियाली में जा हँसा
मिट्टी की खुशबू में महक उठा
दरअसल मैं खुद ही कविता हो गया
अपने मरने के बाद।

तलाश

जिन लोगों को मैं
ढूँढता रहा सारी उमर
ऐसा नहीं कि वह थे ही नहीं
पर कोई पहले पैदा हुआ
कोई बाद
कोई दाएँ पैदा हुआ
कोई बाएँ
बस
वहाँ कोई नहीं हुआ
जहाँ मैं था और जब मैं था।

कोरी किताब

कभी-कभी सोचता हूँ
एक किताब लिखूँ
बिना लफ्ज़ों के
और तुम्हें भेंट करूँ।

तुम अपनी मर्ज़ी से
वह लिख लेना
जो तुम्हारा मन चाहता है कि
मैं तुम्हें लिखूँ

अगर तुम्हें भी लगे कि
जो मैं तुम्हें लिखना चाहता हूँ
वह शब्दों में नहीं आता पूरा
फिर रहने देना
किताब को कोरा ही।

किसी दिन आकर
देख लूँगा
और जो तुम नहीं लिख पाए
उसे पढ़ भी लूँगा।

खाली जगहें

मैं सोचता था,
तुम थोड़ी-सी जगह घेर कर बैठे हो

पर, तुम्हारे मरने पर
कितनी ही जगहें खाली हो गईं
वे जगहें
जहाँ तुम्हारे होने को
मैंने पहले महसूस ही नहीं किया था

तुम शायद
यादों के धुंधलके की ओट में चले जाओ
पर, तुम्हारी खाली की हुई जगहें
मेरे साथ रहेंगी

महलों की उम्र से ज़्यादा
उनके खंडहरों की उम्र होती है

किताबों के पुल

मेरे दोस्त
तुम अपनी बात कह कर
सदियों पहले जा चुके हो
पर समय की दीवार पर
अपनी सोच की पैनी छेनी से
जो नई बात तुमने
उकेरी थी
वह
अब किताबों के पन्नों पर अंकित होकर
मुझ तक आ पहुँची है

निराश न होना
यकीन रखो
तुम्हारा कहा व्यर्थ नहीं गया
मैं उसे सुन रहा हूँ
साफ-साफ सुन रहा हूँ

समय के महासागर के आर-पार
किताबों के पुल ने
मुझे तुम से मिला दिया है
किताबों के पुल
समय और फासले की हदें नहीं मानते

मेरे दोस्त
तुम अपनी बात कह कर
बेशक सदियों पहले जा चुके हो
पर, मैं आज भी तुम्हें
साफ-साफ सुन रहा हूँ।

अंकुर

जब तुम्हें महसूस हो
कि तुम अंदर ही अंदर मर रहे हो
तो भी
अपने जीने के रंग-ढंग कायम रखना
उनके लिये
जो तुम्हें देख कर जीते हैं

क्या पता
उनके प्यार की नमीं में तुम
फिर से अंकुरित हो उठो! ▫

महाकुम्भ का लालित्य

❑ परिचय दास

महाकुम्भ मेला भारतीय संस्कृति, परम्परा और साहित्यिकता का एक अद्वितीय संगम है। इसे न केवल सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाता है बल्कि यह हमारी सामूहिक चेतना का वह प्रतीक है, जहां श्रद्धा, आस्था और समाज की गत्यात्मकता का गहरा मेल होता है। इसकी लालित्यपूर्ण अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य, कला और दर्शन में बार-बार देखने को मिलती है। महाकुम्भ, अपनी भव्यता और वैभव के साथ, भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में एक गहरी जड़ें जमाए हुए परम्परा है, जिसे हर काल और पीढ़ी ने अपने ढंग से परिभाषित किया है।

महाकुम्भ के आयोजन को केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित करना इसकी विशालता को सीमित करना होगा। यह मानव-मन के भीतर की तलाश का प्रतीक है। गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के संगम पर आयोजित होने वाला यह मेला आत्मा और प्रकृति के बीच एक गहरे संवाद को प्रकट करता है। श्रद्धालु यहां स्नान के माध्यम से आत्मशुद्धि की कामना करते हैं लेकिन यह स्नान केवल जल में डूबने का प्रतीक मात्र नहीं है, यह भारतीय दर्शन की उस अवधारणा का प्रतिबिम्ब है जहां जल जीवन का आधार और शुद्धि का प्रतीक माना जाता है।

महाकुम्भ की लालित्यपूर्ण संरचना में विविध रंग समाहित हैं। लाखों लोगों का एकत्र होना, उनकी वेशभूषा, संवाद, और भावनाओं का सम्मिश्रण, यह सब मिलकर कुम्भ को एक दृश्य काव्य बना देते हैं। यहां आने वाले साधु-संत, नागा संन्यासी, गंगा आरती की झंकार और दीपों की कतारें मिलकर एक अद्‌भुत दृश्य प्रस्तुत करते हैं। यह मेला केवल एक स्थान विशेष पर नहीं रुकता, बल्कि यह भारतीय जीवन की उस गतिशीलता को दर्शाता है जो समय-समय पर हमारी संस्कृति को नया आयाम देती है।

भारतीय साहित्य में महाकुम्भ का उल्लेख प्राचीन काल से ही मिलता है। प्राचीन ग्रंथों से लेकर आधुनिक हिन्दी साहित्य तक कुम्भ मेला एक सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में देखा गया है। इसमें प्रकृति, धर्म और मानव के बीच का त्रिकोणीय संबंध स्पष्ट होता है। कुम्भ की कहानियां, कविताएं और यात्रा-वृत्तांत यह दिखाते हैं कि यह मेला केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं है बल्कि यह समाज, संस्कृति और साहित्य का वह मंच है जहां जीवन के विविध पक्ष आपस में गुंथे हुए दिखाई देते हैं।

संस्कृति की दृष्टि से महाकुम्भ मेला भारतीय जीवन की जटिलताओं और विविधताओं को एक साथ प्रस्तुत करता हैं यहां हर वर्ग, जाति और सम्प्रदाय के लोग बिना किसी भेदभाव के एकत्रित होते हैं। यह समानता की भावना ही कुम्भ की आत्मा है। गंगा तट पर खड़े होकर व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत पहचान को खोकर सामूहिकता का अनुभव करता है। कुम्भ का यह भाव हमारे समाज को जोड़ने और एकता का संदेश देने का प्रतीक है।

महाकुम्भ मेला परम्पराओं का जीवंत उत्सव है। इसमें भारतीय जीवन के वे सभी तत्व मिलते हैं जो इसे सम्पूर्ण और समृद्ध बनाते हैं। यहां लोक गीतों की मधुर ध्वनियां, कथावाचन की परम्परा और लोकनृत्यों की प्रस्तुति कुम्भ को केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित नहीं रहने देती बल्कि इसे एक सांस्कृतिक उत्सव के रूप में स्थापित करती है। यह उत्सव इस बात का प्रमाण है कि परम्पराएं केवल अतीत की स्मृतियां नहीं होतीं, बल्कि वे वर्तमान को दिशा देने और भविष्य को संवारने का माध्यम भी होती हैं।

साहित्यिक दृष्टि से, महाकुभ का आयोजन भारतीय साहित्य को नई दृष्टि प्रदान करता है। यहां आने वाले साहित्यकार इस अनुभव को अपने लेखन में समेटते हैं। कुम्भ से जुड़ी कविताएं, कहानियां और उपन्यास भारतीय साहित्य को वह आयाम देते हैं जो इसे वैश्विक पटल पर विशिष्ट बनाते हैं। यहां का अनुभव एक गहन सांस्कृतिक संवाद है जहां व्यक्ति अपने भीतर के और बाहर के संसार को एक साथ देख पाता है।

महाकुम्भ मेला न केवल भारत के लिए बल्कि पूरे विश्व के लिए आकर्षण का केन्द्र है। यह भारतीय संस्कृति की उस समृद्धि को प्रदर्शित करता है जो लालित्य और परम्परा का संगम है। यहां आकर व्यक्ति केवल एक पर्यटक नहीं रहता बल्कि वह इस संस्कृति का हिस्सा बन जाता है। कुम्भ के इस अनुभव को समझने के लिए केवल इसे देखना ही नहीं, बल्कि इसे महसूस करना और इसके साथ जुड़ना भी आवश्यक है।

इस परिप्रेक्ष्य में, महाकुम्भ मेला हमारी सांस्कृतिक स्मृतियों को सहेजने का एक माध्यम है। यह केवल परम्पराओं का उत्सव नहीं है बल्कि यह उन परम्पराओं का नवीनीकरण भी है। यहां आने वाले लोग अपने साथ न केवल आत्मशुद्धि का अनुभव ले जाते हैं, बल्कि वे इस संस्कृति का एक अंश भी बन जाते हैं। कुम्भ इस बात का प्रमाण है कि भारतीय संस्कृति में वह शक्ति है जो समय की सीमाओं को पार कर आज भी प्रासंगिक बनी हुई है।

महाकुम्भ के लालित्य में वह सौंदर्य है जो आंखों से नहीं बल्कि हृदय से अनुभव किया जाता है। यह सौंदर्य केवल दृश्यात्मक नहीं है, बल्कि यह विचारात्मक और भावनात्मक भी है। गंगा के तट पर बैठकर सूर्य की पहली किरण के साथ स्नान करने का अनुभव या दीपों की ज्योति के बीच गंगा आरती का दृश्य, यह सब कुम्भ के लालित्य का हिस्सा हैं।

महाकुम्भ मेला केवल एक धार्मिक आयोजन नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, परम्परा और साहित्यिकता का वह जादुई संगम है जो मानवता को एक नई दृष्टि देता है। यह

हमारी जड़ों से जोड़ने और हमें यह एहसास दिलाने का माध्यम है कि हमारी संस्कृति कितनी समृद्ध और गहरी है। कुम्भ केवल एक मेला नहीं बल्कि यह एक अनुभव, एक विचार और एक दृष्टि है जो हमें हमारी परम्पराओं और संस्कृति के प्रति गर्व और आदर का भाव प्रदान करता है।

महाकुम्भ मेला केवल सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का संगम नहीं है, यह मानव जीवन के बहुआयामी पहलुओं का दर्पण भी है। यह आयोजन हमारी परम्पराओं और आधुनिकता के बीच एक सेतु की तरह कार्य करता है। लाखों लोगों की भीड़ में एक प्रकार का अनुशासन, संगठन और सह-अस्तित्व का जो दृश्य कुम्भ में दिखता है, वह शायद ही कहीं और संभव हो। यह मेला भारतीय समाज की सामूहिक चेतना का ऐसा प्रतीक है जो व्यक्तिगत जीवन के व्यापक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में देखने की प्रेरणा देता है।

महाकुम्भ का तात्त्विक महत्व केवल इसकी ऐतिहासिकता या धार्मिकता तक सीमित नहीं है। यह भारतीय जीवन-दर्शन के उन गहरे सत्यों को भी प्रकट करता है जहां भौतिकता और आध्यात्मिकता का मिलन होता है। गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम केवल भौतिक नदियों का मिलन नहीं है, यह जीवन, चेतना और आत्मा के संगम का भी प्रतीक है। भारतीय दर्शन में, यह संगम जीवन के उद्देश्य और अर्थ की खोज को भी दर्शाता है। यहां स्नान करने वाले केवल शरीर को शुद्ध नहीं करते, बल्कि अपने मन और आत्मा को भी उन असीम ऊर्जाओं से जोड़ते हैं, जो इस पवित्र स्थान पर विद्यमान होती हैं।

महाकुम्भ की भव्यता में उसकी सूक्ष्मता भी समाहित है। साधु-संतों की उपस्थिति, उनका वैराग्य और तप और उनके द्वारा प्रवाहित विचारों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यहां आने वाले श्रद्धालु केवल आशीर्वाद लेने नहीं आते, वे संतों और उनके विचारों से प्रेरणा लेते हैं। यह परम्परा भारतीय समाज में ज्ञान के हस्तांतरण और विचारों के आदान-प्रदान की वह परम्परा है जो महाकुम्भ को एक अनूठा मंच बनाती है इस आयोजन में हर व्यक्ति एक याचक की भूमिका में होता है जो आंतरिक शांति और बाहरी संतुलन की खोज करता है।

साहित्यिक दृष्टि से, कुम्भ मेला भारतीय लेखकों और कवियों के लिए एक अमूल्य स्रोत रहा है। यह मेला मानवीय जीवन की उन जटिलताओं और संवेदनाओं को उजागर करता है जो साहित्य के लिए प्रेरणा का कार्य करती हैं। अनेक रचनाकारों ने भारतीयता और परम्पराओं को अपनी रचनाओं में पिरोया। उनमें समाज की गहरी समझ देखने को मिलती है, कुम्भ ने साहित्य को गहराई और व्यापकता प्रदान की है। यह आयोजन एक ऐसा दर्पण है, जिसमें समाज की वास्तविकता और उसकी संभावनाएं स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

लोकसाहित्य में भी महाकुम्भ का महत्वपूर्ण स्थान है। गांवों और कस्बों में गाए जाने वाले लोकगीतों में महाकुम्भ की महिमा, उसकी पवित्रता और उसकी भव्यता का वर्णन मिलता है। इन गीतों में न केवल धार्मिकता है बल्कि जीवन की वह सरलता और सादगी भी है जो भारतीय लोकजीवन की विशेषता है। कुम्भ से जुड़े किस्से और लोकगाथाएं समाज को सांस्कृतिक विरासत से जोड़ने का कार्य करती हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती आई है।

महाकुम्भ का लालित्य केवल दृश्यात्मक नहीं है बल्कि यह श्रव्य और भावनात्मक भी है। गंगा के तट पर होने वाली आरती, मंत्रों का उच्चारण और घंटों की ध्वनि, यह सब मिलकर एक ऐसा वातावरण रचते हैं जो व्यक्ति को आत्मविभोर कर देता है। यह अनुभव न केवल धार्मिक होता है बल्कि यह कल और सौंदर्य की दृष्टि से भी अद्वितीय होता है। कुम्भ का हर पहलू, चाहे वह तम्बुओं की कतारें हों, साधुओं के शिविर हों, या दीपों की पंक्तियां, सब मिलकर एक ऐसा दृश्य प्रस्तुत करते हैं, जो व्यक्ति के मन में स्थायी छाप छोड़ता है।

महाकुम्भ का सामाजिक महत्व भी अत्याधिक है। यह मेला समाज के वर्ग, जाति और सम्प्रदाय के लोगों को एक मंच पर लाने का कार्य करता है। यहां कोई भेदभाव नहीं है, सब समान रूप से इस पवित्र आयोजन का हिस्सा बनते हैं। यह समानता और सामूहिकता भारतीय समाज की उस गहरी मान्यता को दर्शाती है, जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना विद्यमान है। महाकुम्भ का यह सामाजिक पहलू न केवल हमारी परम्पराओं को समृद्ध करता है बल्कि आधुनिक समाज को भी प्रेरित करता है कि वह सह-अस्तित्व और समरसता के मूल्यों को अपनाए।

परम्पराओं के संरक्षण और उनके पुनर्नवा की दृष्टि से महाकुम्भ मेला एक आदर्श उदाहरण है। यह आयोजन यह सिद्ध करता है कि परम्पराएँ केवल अतीत का बोझ नहीं होतीं, वे वर्तमान के लिए प्रेरणा और भविष्य के लिए मार्गदर्शन का कार्य करती हैं। महाकुम्भ में दिखाई देने वाली भव्यता, अनुशासन और आत्मा की शुद्धि का यह अद्वितीय अयोजन हमें यह सिखाता है कि परम्पराओं को नवीन दृष्टि से कैसे देखा और अपनाया जा सकता है।

महाकुम्भ का वैश्विक महत्व भी कम नहीं है। यह केवल भारत तक सीमित नहीं है, दुनिया भर से लोग इसकी भव्यता और पवित्रता का अनुभव करने आते हैं। यह मेला भारतीय संस्कृति की उस समृद्धि और विविधता का प्रतीक है जो इसे विश्व संस्कृति में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। कुम्भ के माध्यम से भारत ने यह सिद्ध किया है कि वह केवल प्राचीन परम्पराओं का रक्षक नहीं है बल्कि वह उन्हें आधुनिकता के साथ जोड़कर उन्हें नया रूप देने में भी सक्षम है।

महाकुम्भ मेला केवल एक धार्मिक आयोजन नहीं है, यह भारतीय जीवन, संस्कृति और दर्शन का जीवंत प्रमाण है। यह हमारी परम्पराओं, हमारी सांस्कृतिक जड़ों और हमारी सामूहिक चेतना का वह प्रतीक है, जो हमें यह याद दिलाता है कि हम कौन हैं और हमारा समाज किन मूल्यों पर आधारित है। कुम्भ का अनुभव केवल एक क्षणिक अनुभव नहीं है, यह जीवन के अर्थ और उद्देश्य की खोज का एक गहन और स्थायी माध्यम है। यही कारण है कि कुम्भ मेला न केवल भारत के लिए बल्कि पूरी मानवता के लिए एक अमूल्य धरोहर है। ❐

जब लोहिया ने गोवा में आजादी की अलख जगाई

□ संतोष बंसल

आज गोवा भारत का अत्यंत प्रमुख पर्यटन स्थल है,जिसने 1987 में केंद्र शासित प्रदेश से भारत का 25वें राज्य का दर्जा प्राप्त किया था। जहाँ की संस्कृति भी बिलकुल अलग यूरोपीय किस्म की है, इसका कारण यह है कि यह क्षेत्र लम्बे समय तक पुर्तगालियों के कब्जे में था। यद्यपि सन 1498 में वास्को डी गामा भारत आये थे और उसके बाद बारह वर्षों के भीतर ही पुर्तगालियों ने गोवा पर कब्जा कर लिया था। क्योंकि वास्को डी गामा ने यात्रा पर जितना खर्च किया था, उससे करीब 60 गुना ज्यादा वह कमाकर वापिस लौटा।

इसके बाद भारत में पुर्तगालियों का आना-जाना लगा रहा और उन्होंने कालीकट, गोवा, दमन, दीव, हुगली के बंदरगाहों पर अपनी व्यापारिक कोठियां बनाई। तब व्यापार करने के उद्देश्य से आये पुर्तगालियों के मन में भारत को गुलाम बनाने की इच्छा प्रबल हुई, जिसके लिए पुर्तगाल की सरकार ने सन 1509 में अल्फांसो द अल्बुकर्क को वॉयसराय बनाकर भेजा। अल्फांसों भारत में पुर्तगाली शक्ति का संस्थापक माना जाता है, जिसके आगमन के बाद गोवा और उसके आस -पास के क्षेत्र पुर्तगाल के उपनिवेश बने। और सन 1540 तक पुर्तगाली हिन्दुओं और गोवा के कैथोलिकों का नरसंहार करने पर उतारू हो गए। उन्होंने कोंकणी भाषियों का दमन किया और हिन्दू मंदिरों को नष्ट कर के हिन्दू विवाह अनुष्ठानों पर रोक लगा दी। तथा स्वेच्छा से ईसाई धर्म में परिवर्तित होने वाले हिंदुओं को 15 वर्षों के लिए भूमि करों से छूट दी गयी। इसके बाद तो सन 1932 में एंटोनियो सालाज़ार की ताना शाही आने के बाद हालात और भी बदतर हो गए। लोगों को बुनियादी नागरिक स्वतन्त्रता से वंचित रखा गया, उनका भाषण, सभा और प्रेस का अधिकार भी छीन लिया गया। शादी के निमंत्रण कार्ड जैसी साधारण चीजों को भी सेंसर कर दिया गया था।

सन 1946 में जब शेष भारत स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहा था, तभी गोवा के एक शिक्षाविद और लेखक के निमंत्रण पर डॉक्टर राममनोहर लोहिया गोवा पहुंचे। तथापि भारत की स्वतंत्रता के 14 साल बाद 19 दिसम्बर 1961 को गोवा के लोगों को आजादी मिली और लोगों को 451 सालों तक पुर्तगाली शासन झेलना पड़ा। यद्यपि गोवा की आजादी की लड़ाई में लोहिया की भूमिका को सिर्फ गांधी जी का समर्थन मिला, बाकी कांग्रेस के बड़े नेताओं का ध्यान गोवा की तरफ नहीं था। क्योंकि वे सब समझते थे कि इससे अंग्रेजों के खिलाफ चल रही मुख्य लड़ाई से ध्यान भटकेगा और उनका आंदोलन कमजोर होगा।

वास्तव में आजादी की अलख गोवा में डॉक्टर लोहिया ने 1946 की गर्मियों में जलाई थी, जब वे अपने मित्र डॉक्टर जुलियाओ मेनेज़ेस के बुलावे पर गोवा गए थे। लोहिया गोवा के असोलना में उनके घर पर ही रुके थे, जहाँ उन्हें पता लगा कि पुर्तगालियों ने यहाँ लोगों की किसी भी तरह की सार्वजनिक सभा पर रोक लगा रखी है। 'लोहिया एक जीवनी' में डॉक्टर राम मनोहर लोहिया के संघर्ष के बारे में लिखा गया है, ''उनका इरादा तो बीमार शरीर को आराम देने का था, लेकिन गोवा जाकर उन्होंने देखा कि पुर्तगाली शासन, ब्रितानियों से भी अधिक वहशी है। लोगों के किसी भी तरह के नागरिक अधिकार नहीं थी। डॉक्टर लोहिया ने 200 लोगों को जमा करके एक बैठक की, जिसमें तय किया गया कि नागरिक अधिकारों के लिए आंदोलन छेड़ा जाए।'' (ओमप्रकाश दीपक और श्री अरविन्द मोहन)

18 जून 1946 को बीमार राम मनोहर लोहिया ने पुर्तगाली प्रतिबन्ध को पहली बार चुनौती दी और तेज बारिश के बावजूद पहली बार एक जनसभा को सम्बोधित किया। जब उन्होंने पुर्तगाली दमन के विरोध में आवाज उठाई, तो उन्हें गिरफ्तार करके मडगांव की जेल में रखा गया। तब महात्मा गाँधी ने 'हरिजन' में लेख लिखकर पुर्तगाली सरकार के दमन की कड़ी आलोचना की और डॉक्टर लोहिया की गिरफ्तारी पर सख्त बयान दिया। जिसके बाद पुर्तगालियों ने माहौल गर्माता देखकर, लोहिया को गोवा से बाहर ले जाकर छोड़ दिया। रिहाई के बाद लोहिया के गोवा में प्रवेश पर पांच साल का प्रतिबन्ध लगा दिया, किन्तु उन्होंने तीन महीने बाद ही गोवा लौटने का वादा किया। उसी समय पुर्तगाली दमन से परेशान गोवा के हिंदुओं और कैथोलिक ईसाईयों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से प्रेरणा लेकर खुद को संगठित करना शुरू किया।

वस्तुत: गोवा से पुर्तगालियों को हटाने के काम में एक क्रांतिकारी दल सक्रिय था, उसका नाम था—'आजाद गोमांतक दल', जिसकी स्थापना विश्वनाथ लवांडे, नारायण हरि नाईक, दत्तात्रेय देशपांडे और प्रभाकर सिनारी ने की थी। इनमें से कई लोगों को पुर्तगालियों ने गिरफ्तार करके लम्बी सजा सुनायी और कुछ लोगों को तो अफ्रीकी देश अंगोला की जेल में रखा गया। इनमें विश्वनाथ लवांडे और प्रभाकर सिनारी जेल से भागने में कामयाब रहे और फिर लम्बे समय तक क्रांतिकारी आंदोलन चलाते रहे।

इस प्रकार गोवा, दमन और दीव तथा दादरा नगर हवेली के भारत में शामिल होने के

पीछे किन लोगों की भूमिका थी ? यह शायद बहुत कम लोगों को पता है। किस तरह डॉक्टर लोहिया ने गोवा में आजादी की अलख 18 जून 1946 को गर्मियों में जलाई थी और पुर्तगालियों के खिलाफ एकजुट होने के लिए 'सविनय अवज्ञा' का आह्वान किया था। यद्यपि दिसंबर 1946 आते-आते भारत के दूसरे हिस्सों में साम्प्रदायिक हिंसा की आग भड़क उठी और लोहिया गोवा नहीं जा सके। वे गांधी जी के साथ भारत में हिंसा की आग बुझाने में लगे थे, किन्तु लोहिया अपने वादे को नहीं भूले। वे दोबारा गोवा गए, परन्तु उन्हें रेलवे स्टेशन पर ही गिरफ्तार कर लिया गया। इस बार भी गाँधी लोहिया की गिरफ्तारी पर लगातार बोलते रहे, जिसका असर हुआ। और दस दिन तक जेल में रखने के बाद लोहिया को दोबारा गोवा की सीमा से बाहर ले जाकर छोड़ दिया गया।

इस बीच लोहिया ने गोवा से लगे कई जिलों का दौरा किया और गोवा की आजादी की भावना रखने वाले लोगों को संगठित करने का काम शुरू किया। उन्होंने मुम्बई में बसे गोवा के लोगों को एकजुट किया और आंदोलन की तैयारी में जुट गए। 'लोहिया एक जीवनी' पुस्तक बताती है कि, ''गोवा वाले चाहते थे कि लोहिया ही उनका नेतृत्व करें, लेकिन गाँधी जी की राय थी कि गोमांतक लोगों को अपनी लड़ाई खुद लड़नी चाहिए। इसीलिए गांधीजी ने लोहिया को अपने पास बुला लिया।'' किन्तु गोवा छोड़ने से पहले लोहिया ने लोगों को अपना संघर्ष जारी रखने का सन्देश दिया।

यद्यपि बंटवारे और भयावह हिंसा के बाद भारत को आजादी मिल गयी, लेकिन गोवा पुर्तगाल के कब्जे में ही रहा। सन् 1947 में अंग्रेजों के भारत से जाने के बाद गोवा की मुक्ति आंदोलन ने जोर पकड़ा। स्वतन्त्रता सेनानियों द्वारा कई आंदोलनों के बाद भारत ने राजनयिक चैनलों के माध्यम से गोवा की मुक्ति के लिए शांतिपूर्ण प्रयास किया। लेकिन पुर्तगाल ने 1947 के बाद भारतीय क्षेत्रों की संप्रभुता के हस्तांतरण पर स्वतंत्र भारत के साथ बातचीत करने से इंकार कर दिया। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू चाहते थे कि गोवा को राजनयिक माध्यम से एकीकृत किया जाए।

ऐसा नहीं था कि सरदार पटेल के दिमाग में गोवा और पांडिचेरी राज्य नहीं थे, लेकिन इनका सम्बन्ध पटेल के विभाग से नहीं था। ये अंतर्राष्ट्रीय विषय थे, हालांकि पटेल विदेशी मामलों के प्रति उदासीन थे, लेकिन उनमें एक दूरदर्शिता छिपी थी। इसीलिए 1950 में जब केंद्र सरकार की विदेशी संबंधों की समिति गोवा की समस्या पर चर्चा कर रही थी, तो वह दो घंटे चलती रही। राजमोहन गाँधी की किताब 'पटेल ए लाइफ' में कहा गया है, ''इस मीटिंग में पटेल आँख बंद करके ऐसे बैठे थे, मानों नींद में हों। अचानक सजग होकर उन्होंने कहा, ''गोवा में घुसना है ? केवल दो घंटे का काम है। इस पर नेहरू ने आपत्ति की। वजह इस मामले का अंतर्राष्ट्रीय तौर पर जुड़ा होना था। सरदार पटेल ने अपना आग्रह छोड़ दिया।''

वस्तुत: पंडित नेहरू का गोवा के मामले में अंतर्राष्ट्रीय दबाव का आकलन सौलह आने सही था, क्योंकि सैन्य अभियान के उपरान्त भारत को विदेशी विरोध सहन करना पड़ा। यद्यपि इसके बाद सन 1954 में लोहिया की ही प्रेरणा से 'गोवा विमोचन सहायक समिति' बनी, जिसने सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा के आधार पर आंदोलन चलाया। महाराष्ट्र और गुजरात में नरेंद्र देव की 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी' के सदस्यों ने भी उनका भरपूर साथ दिया।

भारत सरकार ने 1955 में गोवा पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए, जिससे वहाँ रहने वाले लोगों को बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। यद्यपि भारत और पुर्तगाल के बीच तनाव गहरा था, लेकिन लोहिया के कई समाजवादी शिष्य गोवा की आजादी के आंदोलन में कूद पड़े। इन लोगों में सबसे अहम् नाम मधु लिमये का था, जिन्हें गोवा की आजादी के लिए दो साल (1955-1957) पुर्तगाली जेल में गुजारने पड़े। उन दिनों गोवा की जेल सत्याग्राहियों से भर गयी और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने इन आंदोलनकारियों की रिहाई के लिए पोप से हस्तक्षेप करने की अपील की।

बलराज कृष्ण द्वारा लिखी गयी एक अन्य जीवनी 'सरदार वल्लभ भाई पटेल : इंडियाज आयरन मैन' के अनुसार पंडित नेहरू ने कहा था, ''अगर हम, जो अहिंसा में विश्वास करने का दावा करते हैं, गोवा को अपने कब्जे में लेने के लिए हिंसा का इस्तेमाल करते है, तो हम एक बुरा उदाहरण पेश करेंगे। इसके आलावा, इससे अंतर्राष्ट्रीय जटिलताएँ भी पैदा होंगी।''

अंतत: डॉक्टर लोहिया का आजाद गोवा देखने का सपना पूरा हुआ, लेकिन वैसे नहीं जैसे वे चाहते थे। गांधी की तरह लोहिया भी चाहते थे कि गोवा सत्याग्रह से आजाद हो, न की बन्दूक की ताकत से। जबकि पुर्तगाल आसानी से गोवा छोड़ने के मूड में नहीं था और नेहरू जी किसी सैनिक टकराव से हिचक रहे थे। यह तो सन 1961 में पुर्तगाली सैनिकों ने गोवा के मछुआरों पर गोलियां चलाई, जिस में एक व्यक्ति की मौत हो गयी और जिसके बाद माहौल बदला और भारत के तत्कालीन रक्षा मंत्री वी.के. कृष्णा मेनन ने नेहरू जी से आपातकालीन बैठक की और 17 दिसंबर को सैनिकों को गोवा भेजने का फैसला लिया।

18 दिसंबर 1961 को सेना उत्तर और पूर्व से गोवा में आगे बढ़ी और डाबोलिम में पुर्तगाली हवाई अड्डे पर बमबारी की। भारतीय नौसेना को पुर्तगाली युद्धपोतों को कार्यवाई से रोकने, मोरमुगाओ बंदरगाह तक पहुँचने और कारवार से अंजदीप द्वीप को सुरक्षित करने का काम सौंपा गया। भारतीय सेना को रोकने के लिए पुर्तगालियों ने वास्को के पास का पुल उड़ा दिया, जिसके छत्तीस घंटे के ऑपरेशन के बाद पुर्तगाल ने कब्जा छोड़ने का निर्णय लिया। यद्यपि पुर्तगालियों ने बचाव करने के बजाय आत्मसमर्पण कर दिया और पुर्तगाली जनरल 'मैनुएलएंटोनियों वसालो ए सिल्वा' ने 'आत्मसमर्पण' के दस्तावेजों पर दस्तख़त कर दिए।